IJAER/January-February-2025/Volume-14/Issue-1 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research
(Peer-Reviewed, Open Access, Fully Refereed International Journal) Impact Factor:7.06

उपनिषदों में अद्वैत सिद्धान्त : एक दृष्टि

डॉ. श्याम लाल, आचार्य
संस्कृत विभाग
चौ. बल्लूराम गोदारा राजकीय
कन्या महाविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.)

शोध सार –

उपनिषदों में वर्णित अद्वैत वेदान्त की मूल अवधारणा यह है कि ब्रह्म एकमात्र सत्य है और यह जीव और जगत् से अलग नहीं है। यह जगत् ब्रह्म का ही व्याप है। उपनिषदों में ब्रह्म को एक और अद्वैत के रूप में स्वीकार किया गया है, ब्रह्म में कोई द्वैत या भेद नहीं है। यह एक ही समस्त देश–काल–परिस्थिति में सर्व शक्तिमान है। आत्मा को ब्रह्म का ही एक अंश माना गया है और इसका उद्देश्य ब्रह्म से तादात्म्य स्थापित करना है। उपनिषदों में माया को ब्रह्म की शक्ति के रूप में अंगीकार करना है। उपनिषदों में माया को ब्रह्म की शक्ति के रूप में अंगीकार किया गया है जो संसार का सृजन व विनाश करती है। माया के कारण ही जीव की ब्रह्म से अलग प्रतीती होती है।

अतः उपनिषदों में ब्रह्म के अद्वैत स्वरूप को जानने के लिए आत्म साक्षात्कार और आत्मावलोकन पर बल दिया गया है, ताकि जीव अपने मिथ्या अहंकार व मोह का त्याग कर ब्रह्म की एकता को समझ सके।

शब्द कुञ्जी –

अवयवार्थ, अमरत्व, स्वकल्याण, रहस्योद्घाटन, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, निराकार, भगवत्स्वरूपा, द्वैतभाव, सर्वकारणात्मकं, सच्चिदानन्द, अनविच्छन्न, परिच्छिन्न, आत्मप्रत्यय, द्रष्टा, प्रकाश स्वरूप, विश्वातीत।

''उप ब्रह्म सामीप्यं निश्चयेन सीदति प्राप्नोति यथा सा उपनिषद्'' अर्थात् जिसके द्वारा ब्रह्म की समीपता निश्चित रूप से प्राप्त हो – वह उपनिषद् है। उप (व्यवधान रहित) नि (सम्पूर्ण) षद् (ज्ञान) ही वेद–पुरुष के अवयवार्थ हैं। उपनिषद् वेद का ज्ञान काण्ड है। वेद का अन्तिम भाग होने से इसे वेदान्त की संज्ञा भी दी गई है। यह चिरप्रदीप्त वह ज्ञान दीपक है जो सृष्टि के आदिकाल से प्रकाशित रहेगा। इसके ज्ञान प्रकाश में वह अमरत्व है, जिसने सनातन धर्म के मूल का सिंचन किया है अभ्युदय से निःश्रेयस् का मार्ग प्रशस्त करने वाली वह अनुपम धरोहर है जो अविद्या से

आवृत्त जगत् का कल्याण करती है तथा यह न केवल ज्ञान का आदि स्रोत है अपितु विद्या का अक्षय भण्डार है, जिसमें मानव स्वकल्याण के निमित्त, त्रिविध दुःखों से मुक्ति हेतु, जन्म–मृत्यु के बन्धन से पार पाने के लिए शाश्वत शान्ति के लिए इनकी शरण में जाता है। इसे अध्यात्म विद्या अथवा ब्रह्म विद्या के नाम से जाना जाता है।

प्राणियों में बाह्य अर्थों का प्रकाश करने वाली तथा नानाविध उपकृत करने वाली विविध विधाएँ हैं, परन्तु परम पुरुषार्थ को प्रकाशित करने वाली परमार्थ के दर्शन करवा लेने वाली परम उपकारिणी विद्या का नाम ही उपनिषद् है।

उपनिषादयति सर्वानर्थकरं संसारं विनाशयति, संसारकारणभूतामविद्यां च शिथिलयति ब्रह्म च गमयति इति उपनिषद्। अर्थात् जो समस्त अनर्थों को उत्पन्न करने वाले संसार का नाश करती, संसार की कारणभूत अविद्या को शिथिल करती तथा ब्रह्म की प्राप्ति करवाती है – वह उपनिषद् है।

वर्तमान में मनुष्य भौतिकवाद के जाल में दिग्भ्रम होकर स्वयं के यथार्थ को नहीं जान पाता और कष्टों का भोग करता रहता है। जीव और ब्रह्म के रहस्योद्घाटन का कार्य उपनिषद् करते हैं और मानवमात्र को शान्ति की ओर ले जाते हैं। अज्ञानी मानव जीव–ब्रह्म, आत्मा–परमात्मा, प्रकृति–पुरुष, क्षर–अक्षर, शिव–शक्ति के द्वैत से अद्वैत के सिद्धान्त को हृदयङ्म नहीं कर पाता है।

अद्वैत को समझने से पहले द्वैत को समझना होगा जो कि प्रायः साधारण मनुष्य सोचता है। यद्यपि उपनिषदों का स्पष्ट मत है – ''जीवो ब्रह्मैव नापरः'' अर्थात् जीव ब्रह्म ही है, ब्रह्म से पृथक नहीं। उपनिषदों में जीवन के विभिन्न पहलुओं को समझने के लिए द्वैत–अद्वैत सिद्धान्त को समझना आवश्यक है।

द्वैत सिद्धान्त –

द्वैतवाद एक प्रमुख हिन्दू दर्शन है जिसके प्रणेता श्री मध्वाचार्य है। इस दर्शन के अनुसार इस जगत् में दो शक्तियाँ हैं – ईश्वर और जीव दो भिन्न–भिन्न सत्ताएँ हैं, जिसमें ईश्वर सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक और सर्वज्ञ है, जबकि जीव सीमित शक्ति और ज्ञान वाले हैं। यद्यपि उपनिषदों में द्वैतवाद के सिद्धान्त को विशेष रूप से उल्लेखित नहीं किया गया है तथापि आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध को समझाने का स्तुत्य प्रयास किया गया है।

भारतीय सनातन धर्म में उपासना पद्धति भिन्न–भिन्न होते हुए भी मूल में वस्तुतः एक तत्त्व है – **''एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति''।** एक ही शक्ति की विभिन्न पद्धतियों द्वारा उपासना करते हैं। इस सत् तत्त्व को कुछ मानते हैं, कुछ नहीं मानते हैं। इस मूल तत्त्व को ही द्विध सत्ता के रूप में द्वैत या युगल स्वरूप के रूप में स्वीकारा गया है। इस मूल तत्त्व (ईश्वर) को दो रूपों में उपासक मानते हैं। एक और निर्गुण या निराकार रूप में आस्था प्रकट कर उपासना करने वाले निराकारवादी उपासक हैं, वहीं दूसरी ओर सगुण या साकार रूप में स्वीकार करने वाले उपासक उस ईश को विविध रूपों में देखते हैं। जैसे पार्वती–परमेश्वर, लक्ष्मी–नारायण, सीता–राम, राधा–कृष्ण आदि रूप में। एक ही शक्ति स्वरूपा दुर्गा, महाकाली, महालक्ष्मी, सरस्वती, तारा, उमा, अन्नपूर्णा, सीता, राधा आदि विविध स्वरूपों में उपासक उपासना करते हैं। कोई इसे कुलदेवी के रूप में ही आस्था प्रकट करते हैं जबकि मूल में भगवत्स्वरूपा देवी शक्ति तत्त्व के रूप में लीला वैचित्र्य के कारण विविध धामों में विविध स्वरूपों में विविध स्थलों में नित्य विराजित है। परन्तु यह द्वैत सत्ता उपरोक्त ईश की तरह नहीं है, जैसा कि दो परस्पर निरपेक्ष सम्पूर्ण स्वतन्त्र व्यक्ति या पदार्थ किसी एक स्थान पर स्थित हों। यह शक्ति स्वरूपा एक होकर ही भिन्न–भिन्न प्रतीत होती है। इनमें से एक के अभाव में दूसरे की सत्ता अनुपलब्ध है। वस्तु और उसकी शक्ति, तत्त्व और उसका प्रकाश, विशेष्य और उसके विशेषण, पद और उसका अर्थ, पुष्प और उसकी सुगन्ध, सूर्य और उसका तेज, चन्द्रमा और उसकी शीतलता, अग्नि और उसका दाहकत्व इनमें जैसे नित्य द्वैतभाव विद्यमान हैं वैसे ही ब्रह्म के स्वरूप में द्वैत सत्ता है जो नित्य द्वैधीभाव में होते हुए भी नित्य एक ही है और नित्य द्वैत होते हुए भी एक है और नित्य एक होते हुए भी नित्य दो है, जो नित्य भिन्न होकर भी नित्य अभिन्न है और नित्य अभिन्न होकर भी नित्य भिन्न है। जो एक में ही सदैव दो है और दो में ही सदैव एक है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में प्रकृति पुरुष की सत्ता को एक तत्त्व में ही दो की सत्ता दिखाई देती है –

''यथा साम्ना वीणावादनं तथैव

मे राधे त्वदीयः प्राणेश्वरः।।''

अर्थात् जैसे वीणा के तारों में साम्ना की ध्वनि होती है, वैसे ही मेरे प्राणेश्वर पुरुष में प्रकृति की ध्वनि होती है।

उपनिषदों में यह भी उल्लेखित है कि परमेश्वर इस शरीर के अन्दर सबके हृदय में निराकार रूप से सर्वदा विराजमान है, परन्तु उनके न जानने के कारण ही लोग दुःखी हो रहे हैं। जो इस परमेश्वर की उपासना करता है, वह उन्हें जान लेता है और इसलिए सम्पूर्ण दुःखों और शोक समूहों से निवृत्त होकर परमेश्वर को प्राप्त कर लेता है। मुण्डकोपनिषद् में जीवात्मा और परमात्मा का दो पक्षियों के दृष्टान्त से बहुत ही सुन्दर चित्रण किया गया है –

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वादृत्यनश्नत्रन्यो अभिचाकशीति।।[1]

अर्थात् एक साथ रहने वाले तथा परस्पर सखाभाव रखने वाले दो पक्षी (जीवात्मा और परमात्मा) एक ही वृक्ष (शरीर) का आश्रय लेकर रहते हैं, उन दोनों में से एक तो उस वृक्ष के कर्मरूप फलों का स्वाद ले–लेकर उपभोग करता है, किन्तु दूसरा (परमात्मा) न खाता हुआ केवल देखता रहता है।

वेदमूलक उपनिषद में ही जिस परम तत्त्व का वर्णन करते हैं उसके मुख्यतया दो स्वरूप हैं –एक 'सर्वातीत' और दूसरा 'सर्वकारणात्मक'। सर्वकारणात्मक स्वरूप के द्वारा ही सर्वातीत का सन्धान प्राप्त होता है और सर्वातीत स्वरूप ही सर्वकारणात्मक स्वरूप का आश्रय है।

वस्तुतः ब्रह्म की अद्वैतपूर्ण सत्ता इन दोनों स्वरूपों को लेकर ही है। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा है – **''तत्त्वमसि''** अर्थात् तुम वही हो। यह मन्त्र प्रकृति पुरुष के युगल स्वरूप की एकता और अद्वैतता को दर्शाता है। वहीं पुरुष सूक्त के एक मन्त्र से ब्रह्म के स्वरूप को जाना जा सकता है –

''सहस्र शीर्षा पुरुषेः सहस्राक्षः सहस्रपाद्''।[2]

अर्थात् मन्त्र में प्रकृति–पुरुष के युगल स्वरूप की विशालता और सर्वशक्तिमानता को दर्शाता है।

माण्डूक्योपनिषद् में ब्रह्म की अद्वैतता के सन्दर्भ में कहा है –

''सर्व ह्येतद् ब्रह्मायेमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात्''।[3]

अर्थात् यह सब का सब ब्रह्म है अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं है, यह आत्मा (परमात्मा) ब्रह्म ही है। वह यह परमात्मा चार चरणों वाला है। वस्तुतः उन अखण्ड निरवयव परब्रह्म परमात्मा को चार पादों वाला कहना नहीं बनता तथापि उनके समग्र रूप की व्याख्या करने के लिए उनकी अभिव्यक्ति के प्रकार – भेदों को लेकर श्रुतियों में जगह–जगह उनके चार पादों की कल्पना की गयी है। यह मन्त्र प्रकृति–पुरुष के युगल स्वरूप की एकता और अद्वैतता को प्रकट करता है।

उपनिषद् के दिव्य दृष्टिसम्पन्न ऋषियों ने जहाँ विश्व के चरम और परम तत्त्व एक, अद्वितीय, देशकाल–अवस्था–परिणाम से सर्वथा अनवच्छिन्न सच्चिदानन्द स्वरूप को देखा वहीं उन्होंने उस अद्वैत परब्रह्म को ही उसकी अपनी ही विचित्र अचिन्तय शक्ति के द्वारा अपने को अनन्त विचित्र रूपों में प्रकट भी देखा और यह भी देखा कि वही समस्त देश, काल, अवस्था तथा समस्त परिणामों में छिपा हुआ अपने स्वतन्त्र सच्चिदानन्दमय स्वरूप की, अपनी नित्य सत्ता, चेतना और आनन्द की मनोहर झांकी करा रहा है। ऋषियों ने जहाँ देशकाल–अवस्था–परिणाम से परिच्छिन्न अपूर्व पदार्थों को ''यह वह नहीं है, यह वह नहीं है'' (नेति–नेति) कहकर और उनसे विरागी होकर यह अनुभव किया कि – ''वह परमात्मा ऐसा है जो न कभी देखा जा सकता है, न ग्रहण किया जा सकता है, उन उसका कोई गौत्र है, न उसका कोई वर्ण है, न उसके चक्षु–कर्ण और हाथ–पैर आदि है – **''यत् तददेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम्।''**[4]

वह न भीतर प्रज्ञा वाला है, न बाहर प्रज्ञा वाला है, न दोनों प्रकार की प्रज्ञा वाला है, न प्रज्ञानधन है, न प्रज्ञ है, न अप्रज्ञ है, वह न देखने में आता है, न उससे कोई व्यवहार किया जा सकता है, न वह पकड़ में आता है, न उसका कोई लक्षण (चिह्न) है, जिसके सम्बन्ध में न चित्त से कुछ खोजा जा सकता है और न वाणी से कुछ कहा ही जा सकता है। जो आत्मप्रत्यय का सार है, प्रपञ्च से रहित है, शान्त, शिव और अद्वैत है –

''नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्।

अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म प्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं।''[5]

उन ऋषियों ने यह भी अनुभव किया कि 'जब वह द्रष्टा उस सबके ईश्वर, ब्रह्मा के भी आदि कारण, सम्पूर्ण विश्व के सृष्टा, दिव्य प्रकाशस्वरूप परम पुरुष को देख लेता है, तब वह निर्मल हृदय महात्मा पाप–पुण्य से छूटकर परम साम्य को प्राप्त हो जाता है –

''यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति।।''[6]

अपने विश्वातीत रूप में स्थित रहते हुए भी अपनी वैचित्र्य प्रसविनी कर्मशीला अचिन्त्य शक्ति के द्वारा विश्व का सृजन करके अनादि अनन्तकाल उसी के द्वारा अपने विश्वातीत स्वरूप की उपलब्धि और उसका सम्भोग करते रहते हैं। उपनिषद् में जो यह आया है कि वह ब्रह्म पहले अकेला था, वह रमण नहीं करता था। इसी कारण आज भी एकाकी पुरुष रमण नहीं करता। उसने दूसरे की इच्छा की, उसने अपने को ही एक से दो कर दिया, वे पति–पत्नी हो गए।

''स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्।
स इममेवात्मानं द्वेधाऽपातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्।।''[7]

इस युगलरूप में ही ब्रह्म के अद्वैतस्वरूप का परमोत्कृष्ट परिचय प्राप्त होता है। अतएव उपनिषद् ने एक ही साथ सर्वातीत और सर्वकारणरूप में स्थितिशील और गतिशील में, निष्क्रिय और सक्रिय रूप में, अव्यक्त और व्यक्त रूप में एवं सच्चिदानन्दघन पुरुष विश्वजननी नारी रूप में इसी युगल अर्थात् अद्वैत स्वरूप का वर्णन किया है।

वस्तुतः पुरुष रूप में ब्रह्म का सर्वातीत निर्विकार निष्क्रियभाव है, और नारीरूप में उन्हीं की सर्वकारणात्मिका अनन्त लीला वैचित्र्यमयी स्वरूपा शक्ति का सक्रिय भाव है। पुरुष मूर्ति में भगवान विश्वातीत है, एक है और सर्वथा निष्क्रिय है एवं नारी मूर्ति में वे ही विश्वजननी, बहुप्रसविनी, लीला विलासिनी रूप में प्रकाशित है। पुरुष विग्रह में वे सच्चिदानन्द स्वरूप हैं और नारी विग्रह में उन्हीं की सत्ता का विचित्र प्रकाश है, उन्हीं के चैतन्य की विचित्र उपलब्धि तथा उन्हीं के आनन्द का विचित्र आस्वादन है। अपने इस नारीभाव के संयोग से ही वे परम पुरुष ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता हैं, सृजनकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता है।

इस प्रकार उपनिषदों में ब्रह्म के अद्वैत अर्थात् युग्म स्वरूप का उल्लेख किया है जो अविद्या के कारण भिन्न दिखाई देते हुए ही भी वस्तुतः एक ही है।

सन्दर्भ –

[1] मुण्डकोपनिषद् 3.1.1

[2] ऋग्वेद पुरुष सूक्त–1

[3] माण्डूक्योपनिषद –

[4] मुण्डकोपनिषद् 1.1.6

[5] माण्डूक्योपनिषद्–7

[6] माण्डूक्योपनिषद्–7

[7] बृहदारण्यकोपनिषद् 1/4/3